शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

संस्कृत ग़ज़लों में प्रेम का स्वरूप

प्रो. अलका बागला (निर्देशक)
कोटा विश्वविद्यालय
कोटा, (राजस्थान)
आचार्य, (संस्कृत विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
झालावाड़, राजस्थान
नारायण प्रसाद (शोधार्थी), संस्कृत
कोटा विश्वविद्यालय
कोटा, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

आधुनिक संस्कृत साहित्य में अनेक विधाएं प्रचलित हो रही हैं। उनमें से ग़ज़ल विधा एक नई परम्परा के रूप में प्रस्फुटित हुई। यद्यपि संस्कृत ग़ज़ल कहने की अभी कोई आलोच्य परम्परा विकसित नहीं हो पायी है तथापि संस्कृत में पर्याप्त ग़ज़ले लिखीपढ़ी जा रही हैं। संस्कृत ग़ज़लों का विषय विविधता से युक्त है। जैसे राष्ट्रभक्ति आधारित ग़जलें आदर्शवादी, ग़ज़लें, यथार्थवादी ग़ज़लें, सामाजिक ग़ज़लें तथा प्रणयाधारित ग़ज़लें आदि। उर्दू भाषा में जो ग़ज़लें लिखी गईं उनका प्रारंभिक विषय प्रेम पर ही आधारित था। प्रारंभ में उर्दू से अनुवाद करके संस्कृतमें जो ग़ज़लें लिखी गई तब उनका विषय भी प्रेम ही था। प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृति ग़ज़लों में प्रेम के स्वरूप पर विचार किया गया है।

अपनी तमाम भौतिक रासायनिक संरचना में यह गेय विधा ग़ज़ल के रूप में अपने कुछ परम्परागत आन्तर-बाह्य गुण-धर्मों से संस्कृत में भी पहचानी जाती है। रूप-प्रविधि की दृष्टि से ग़ज़ल संस्कृत में भी वही है जो उर्दू-हिन्दी में है। परन्तु सुदूर अतीत से आज तक वस्तु विषयक युगीन परिवर्तनों के बीच कुछ वस्तुरूढ़ियाँ ऐसी भी हैं जो अभी तक पूरी तरह नहीं टूटी हैं। घायल-गजाला की आह-ए-प्रेमविह्वल मिथुन का परस्पर बातें करना, या गुफ्तगू करना, औरतों से बातें करना आदि लाक्षणिकताएँ इस विधा में इतनी गहराई में उतर गयी हैं कि नये सामाजिक सरोकारों की केन्द्रीय चिन्ता और संवेदना में लिखी गयी ग़ज़लों में भी एकाध शेर ऐसा मिल ही जाएगा जिसमें ग़ज़ल के मनोभौतिक बीजाक्षरों को आसानी से पढ़ा जा सकता है।**1**

निरर्थाऽभवन्मत्कृते बाह्यसृष्टिः
यदारभ्य सा त दृशोरेव दृष्टा।
जगद्रञ्ज्जनायाऽवयो रम्यपाट्यम्
अहं ताण्डवे त्वञ्च लास्ये विशिष्टा।।**2**

अर्थात् जब से मैंने संसार को तुम्हारी आंखों से देखना प्रारंभ किया है, मेरे लिए तभी से बाहरी

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

दुनिया बेकार लगने लगी है। हम दोनों का मनोरम जीवनरूपी नाट्य लोकानुरंजन मात्र के लिए है। मैं प्रवीण हूँ ताण्डव में और तुम भी अप्रतिम हो लास्य में। अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की संस्कृत ग़ज़ल की ये पंक्तियां सात्विक प्रेम की पराकाष्ठा से परिपूर्ण हैं।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री संस्कृत ग़ज़ल परम्परा के प्रथम ग़ज़लकार माने जाते हैं। शास्त्री जी ने भी प्रेम पर पर्याप्त ग़ज़ले लिखी हैं। उनकी ग़ज़लों में प्रेम पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

विलिखामी मानसवेदनां विसृजामि हन्त तदन्तिके
परमन्तरं परिशङ्कते स विलोकयिष्यति वा न वा।**3**

अर्थात् लिखकर मन की वेदना भेज रहा हूँ उनके पास पर मन में यह आशंका रहती है कि वे देखेंगे या नहीं। इस शेर (आरम्भिका) में एक प्रेमी जो किसी युवती से प्रेम करता है किन्तु अभी तक अपने प्रेम का इजहार नहीं किया, 'परिशङ्कते' शब्द से प्रेमी के एकतरफा प्रेमभाव का बोध होता है। भट्ट जी की प्रेम के रंग में रंगी यह ग़ज़ल गीति भी द्रष्टव्य है :

अये भोः प्रिये ! ते प्रतीतिर्न वा ?
तव प्रेमिणां कापि रीतिर्नवा।
अकारस्थले 'आह' आवेदयन
मृतावेव संमोदमासादयन्
प्रिये प्रेमविद्यालये सोत्सवा
अहो प्रेमिणां स्यादधीतिर्नवा।।**4**

भट्ट जी की ग़ज़लों में हृदय से अनन्त प्रेम तथा विरह वेदना का स्वर मुखर होकर मूर्त रूप में हमारे सम्मुख विद्यमान है :

चिन्ता निरन्तरं सखे विनिहन्ति हन्त माम्।
सेयं वियोगवेदना व्याहन्ति हन्त माम्।।
किं वर्णयामि वेदनां वक्तुं न पारये।
अस्त्रा हि कण्ठकीलिता रुन्धन्ति हन्त माम्।।**5**

भट्ट जी के बाद भी संस्कृत ग़ज़लों में प्रेम की यह सरिता निरन्तर अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। संस्कृत ग़ज़ल की चर्चा प्रो.अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के बिना अधूरी रह जाती है। उनकी प्रेम पर आधारित ग़ज़ल द्रष्टव्य है :

अतीतस्मृतिः क्षीयते मन्दमन्दम्।
भविष्यद्गतिः स्मर्यते मन्दमन्दम्।।
अहो धीवरात्प्राप्य दत्तांगुलीयम् ।
स्मरत्यादितः पौरवो मन्दमन्दम।।**6**

अर्थात् पुरानी यादें धीरेधीरे क्षीण हो रही हैं। आगे आने वाली स्थितियों का शनैः शनैः बोध (अनुभव) हो रहा है। आश्चर्य है कि (शकुंतला को) पहनाई गई मुँदरी धीवर से प्राप्त करते ही पौरव (दुष्यंत) धीरे-धीरे सब कुछ प्रारंभ से ही स्मरण करने लगा है।

उन्हीं की एक और ग़ज़ल देखिए :

प्रीतिक्षुपं विवर्धय बन्धो! शनैः शनैः।
सुहृदां मनोऽनुरंजय बन्धो! शनैः शनै गा
मा त्वत्कृतेऽपि झंझाकौलीनमुद्भवेत्
वाचस्समीरमीरय बन्धो! शनैः शनै।।
मत्तवारणी यंत्रस्था अन्येपि
नैव रागोऽधरे, नो कुचे चन्दनम्
किन्नु पृच्छेत्सखी हन्त दुतीमिमाम् **7**

अर्थात् तुम्हारे अधर का राग साफ हो गया है तथा पयोधरों पर चन्दन भी नहीं रहा। अब इस दूती से सखी (स्वामिनी) पूछे भी तो क्या ? यहाँ नायिका एवं दूती दोनों ही जानती थी कि वह नायक के साथ रमण करने गई थी। यहाँ जो प्रश्नवाचक चिह्न है, यह स्पष्ट कर देता है कि स्वामिनी (सखी) तुम्हारे तथा नायक के द्वारा किये गये विश्वासघात को जान चुकी है यह शेश्र

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

काव्य प्रकाश के उत्तम काव्य के लक्षण को स्मृति में रेखांकित कर देता है।

प्रेम की व्याख्या में बच्चूलाल अवस्थी जी कहाँ पीछे रहने वाले हैं। वियोग श्रृंगार से परिपूर्ण एक ग़ज़ल नेत्रों को आर्द्र कर रही है। वस्तुतः प्रेम, प्रेमिका एवं विरह ग़ज़लों का मुख्य वर्ण्य विषय रहा है। आचार्य बच्चूलाल ने 'क्व यातास्तेष् ग़ज़ल में स्त्री के सम्पूर्ण संकेतों एवं आचरण को प्रकट किया है। जिसका व्यङ्ग्यगर्भित भावनिदर्शन इस प्रकार है :

दृशोरावर्जकाः कल्याणि संभाराः क्व यातास्ते।
हृदि स्फूर्जा वितन्वानां अलंकाराः क्व यातास्ते।।
इयं वात्सल्य भूमिर्दिव्यभूमिर्वा भवेत् काममम् ।
अभिष्वङ्गा अनङ्गस्य प्रतीहाराः क्व यातास्ते।।
शिरो वक्षोजयोराधाय मे केशेषु साकूतम्
स्मितैर्विद्योतमाना अंगुलीचाराः क्व यातास्ते।।**8**

हे ! कल्याणि आँखों को आकर्षित करने वाली तुम्हारी समृद्धि कहां चली गई। दिल में कौतुक को जन्म देने वाल तुम्हारे नर्म मर्म अलंकार कहाँ गये।

प्रेम की ग़ज़ल की बात हो और जगन्नाथ पाठक जी की चर्चा न हो यह पाठकों को कब गंवारा होता। प्रेम में सुखद दिनों के बीत जाने पर प्रिय की दशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं:

त्वं मदन्तिके येषु ते हि नो गता दिवसाः।
किं प्रतीक्षया तेषां ते हि नो गता दिवसाः।।
श्वसिम इत्यहो किं रे जीवनं विनापि त्वाम्।
जीवनं च येष्वासीत ते हि नो गता दिवसाः।।**9**

जगन्नाथ पाठक जी मृद्वीका में प्रेम का वर्णन करते हुए कहते है :

प्रणयाभिनयस्य काचना,
परशैली तु तटस्थता तव।
मुखरं विदधीत मां कथं तव,
मौनं श्वणमेवमन्यथा।।**10**

अन्येपि

तम एव ममाग्रतः स्फुरत्य.
घुना तद्गतचेतसो भृशम् ।
किमु नाम तयाऽञ्जनेन ते
नयने स्वे कुटिले नियोजिते।।**11**

आजकल शादियों में प्री-वेडिंग परम्परा प्रचलित हो रही है, जिसका लड़की और लड़के के परिवार वाले भी समर्थन कर रहे हैं। कविवर महेश झा कटाक्ष करते हुए अपने मन के उद्गार ग़ज़ल में इस प्रकार कहते हैं :

पुराश्रुतं बहुप्रिय वृत्तम् ।
प्रिये निशम्यतामिदं वृत्तम् ।
विवाहपूर्वमद्य कन्याभिः,
प्रियैः समं तिथीकृत वृत्तम्
दिनस्त्रिभिश्चतुर्भिरष्टाभिः,
विवाहबन्धनक्षतं वृत्तम्
विदेश पद्धतिं दधानानाम्,
नृणामुदारर्शन वृत्तम्।**12**

भावार्थ पहले बहुत प्रिय कथा कहानी या घटना सुनी। हे प्रिये ! यह कथा सुनी। आजकल की घटना सुनकर तेरा शरीर रोमाञ्चित हो जाएगा। अविवाहित लड़कियों द्वारा प्रेमियों के साथ निश्चित अवधि के लिए विवाह से पहले तिथि निर्धारित पर रहने की घटना (डेट पर जाना)। लोगों के द्वारा संगम के लायक नारियों की स्पर्धा में जाँच करने की घटना (सेक्सी के अनुसार स्तर निर्धारण), तीन, चार या आठ दिनों में विवाह बन्धन के विच्छेद (तलाक) की घटना, घरों में, गुफाओं में, सभाओं में, यत्र-तत्र संगम का अवसर मिल जाता है, यह घटना। विदेशी सभ्यता को अपनाने वाले लोगों के उदारवादी दृष्टिकोण की घटना। प्रेमी के साथ संगम की सुविधा के लिए पति की प्रताड़ना भरी घटना।

झा साहब आगे लिखते हैं :

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रभाते प्राचीमुखं पुनरेव रक्तम् ।
खण्डितावदनं क्रुधा सहसेव रक्तम्.....
रविं रमणमुपेत्य रममाणा सखीयम् ।
पदं कुरुते नवोढा प्रमदेव रक्तम् ।।**13**

अर्थात् पूरब दिशा का मुख पुनः लाल हो गया। जैसे खण्डिता नायिका ;जिसका पति अन्यत्र कहीं रमण कर रात के अन्तिम पहर में अपनी प्रियतमा के पास आता है, (वह प्रियतमा खण्डिता नायिका कहलाती है) उसका चेहरा क्रोध से एकाएक लाल हो गया हो। प्रियतम सूर्य को पाकर रमण करती हुई यह सखी (पूरब दिशा) नवविवाहिता नायिका की तरह अपना पैर रंग रही हो। और देखिये :

मदीयचिन्तने त्वमेव त्वम्।
मदीयजीवने त्वमेव त्वम् ।।
न भाति मद्गृहं त्वया हीनम्।
न याति च क्षणं त्वमेव त्वम् ।।
न काव्यभावना त्वया हीना।
मम प्रबन्धने त्वमेव त्वम्।।**14**

भावार्थ मेरे चिन्तन में तुम ही तुम हो, मेरे जीवन में तुम ही तुम हो। तेरे बिना मेरा घर नहीं शोभता, तथा एक पल भी नहीं बीत पाता, केवल रहती हो। तेरे बिना मुझमें काव्य भावना भी नहीं हो पाती, मेरी प्रबन्ध रचना में केवल तुम ही विद्यमान रहती हो।

संस्कृत ग़ज़लों के सिरमोर कविवर हर्षदेव माधव जी की द्वारा प्रणीत ग़ज़लें नये-नये उपमानों के साथ प्रस्तुत होती हैं।

हर्षदेव माधव जी की संस्कृत ग़ज़लों में वियोग श्रृंगार का स्वरूप देखिए :

शुष्ककाष्ठायते प्रिये ! हृदयम् ।
लूनपुष्पायते प्रिये ! हृदयम् ।।
हा ! गता यामिनीए गताः स्वप्नाः
शून्यग्रामायते प्रिये ! हृदयम् ।।
व्योम शून्यं दिशो विना चन्द्रम्।
रिक्तमेघायते प्रिये ! हृदयम् ।।**15**

एक नये अन्दाज में रचित प्रेम की ग़ज़ल अवश्य ही दृष्टय है :

कार्मुके कामस्य कृत्वा भ्रूतले।
कं निषाद हन्ति हरिणाक्षी प्रिया।।
कुत्रचिद् रिक्तौष्ठ इव मधूपो गतः।
वंजुकुंजे भ्रमति मदिराक्षी प्रियज्ञं।।**16**

और भी

रिक्तता मे भाषया गेया भवेत्।
शून्यता नभसः कथं मेया भवेत् ।।
त्वत्स्मृतिमदिरा पुनः पेया भवेत् ।।
चित्रफलकं वर्तते ग़ज़लस्य भोः !
त्वच्छविरश्रुभिरालेख्या भवेत् ।।**17**

आचार्य जगन्नाथ पाठक ने दीवाने-गालिब (गालिब काव्य) में मिर्ज़ा ग़ालिब की उर्दू ग़ज़लों का संस्कृत में अनुवाद किया है, उनका प्रेम पर किया गया अनुवाद भी देखने योग्य है :

मृत्यावपि मे नाभूत् सहमत इत आततायी सः।
कस्यापि त्वं निर्दय मित्रमभूर्नैव हन्त जगतीह।।

मूल ग़ज़ल वह सितमगर मेरे मरने पर भी राजी न हुआ।

तू दोस्त किसी का भी सितमगर न हुआ।।

डॉ.परमानन्द शास्त्री भी आनन्दगालिबीयम् में अनुवाद करते हुए प्रेम को परिभाषित करते हैं :

कुसुमादि बुलबुलाप किया भारमुपहसन्ति।
प्रेम कथ्यतेऽस्ति विक्षेपः स मस्तिष्करूप।।

प्रेम में कोई इतना भी डूब जाता है कि उसको अपने आस-पास के वातावरण से प्रिय और उसकी आहटें ही सुनाई देने लग जाती हैं। वह वर्तमान संसार को भूल-सा जाता है। महाराजदीन पाण्डेय जी की इसी भाव में डूबी ग़ज़ल द्रष्टव्य है :

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

त्वमसीह नो नच ते कथा क्वसमागतोन्हमरनटना।
इह वर्जना हि समन्ततः कुर्वे स्थिति किमुपाश्रयन।।
न निगूहितं तद्गूहितं मां त्वाश्च सौम्य यदन्तरा।
लिखितं गतिषु दृशि चेष्टितेषु विधाय कोऽपि विसारयन् ।।
सर्वत्र पुरो विकीरित तव रूपधेयमितस्ततः
प्रीतिवीधि पथि पथि सर्वतस्तव पदखः श्रवमाहरा।।**18**

प्रिय ! मेरे और तुम्हारे बीच जो भी है, प्रकट है, छिपा नहीं है। उसे गति में दृष्टि में और चेष्टाओं में लिखकर कोई चारों ओर प्रसारित कर रहा है। सब जगह सम्मुख तुम्हारा रूप इधर-उधर बिखरा हुआ है। गली और राह सब ओर तुम्हारी पदचाप कर्णेन्द्रिय को खींच रही है । एक और ग़ज़ल देखिए :

करतले चन्द्रगोलोऽभीप्सितस्तेनापराद्धं किम्।
असौ चेदात्मने संप्रार्थितस्तेनापराद्धं किम् ।**19**

अन्ये अपि

शून्ये मनो न रमते खिन्नं च कलकलेन।
मधुरं समीरितव्यं शनकैस्त्वयाऽऽगतेन।।
अंशोपलब्धिरेषा हृदयं खलीकरोति।
एहि त्वमिह कदाचित् स्वेनाखिलेन तेन।**20**

अर्थात् सूने में मन लगता नहीं और शोरगुल से परेशान होता है। धीरे से आ जाओ, मीठी-मीठी बातें करें। यह आंशिक उपलब्धि हृदय को दुखाती है। कभी तुम मेरे पास अपने सम्पूर्ण स्व के साथ आओ न !

इसी प्रकार जगन्नाथ पाठक का एक शेर भी द्रष्टव्य है :

अहमेव दुःखहेतुरमीषां तु यद्यपि
दुःखी कृतो न कोऽपि जनः सर्वतो मया।**21**

उनके दुःखों का कारण यद्यपि मैं ही हूँ फिर भी मैंने किसी व्यक्ति को दुःखी नही बनाया।

प्रतिवृन्तं किसलयान्हो प्रतिशाखं पिकभृङ्गकुलम् ।
क्षीबं क्षीबं मधौ वनं किमिदं जातं विलक्षणम् ।**22**

अर्थात् वृन्त में नई कोंपलें और डाल्डाल पर भौरों एवं कोकिलों का जमावड़ा। ऋतुराज वसन्त के आते ही नशीले इस जंगल में क्या खासियत पैदा हो गई।

त्वद्वचः श्रुतं सुखदं त्वन्मधु स्मितं पीतम्
ये च तेऽन्तिके नीतास्ते हि नो गता दिवसाः।**23**

तुम्हारे वो सुख भरे वचन सुने, तुम्हारे वो मधुर रस को पीया, तुम्हारे साथ में जो दिन गुजरे अपने वो दिन चले गए।

हे मित्र! यह चिन्ता मुझे निरन्तर खाये जा रही है, यही वियोग की वेदना मुझे खा रही है। वेदना का कैसे वर्णन करूँ, बोल नहीं सकता, गले में गीले होकर लगे आँसू मुझे दुःख देते हैं। इसी प्रकार :

व्यथया याति दिनं यामिनी विनिद्रतया ।
अनया वेदनयाऽकारि दशा हीनेयम् ।**24**

प्रेम को एक प्रेमी ही विधिवत् रूप में समझ सकता है। प्रेम जीवन की सर्वव्यापक वृत्ति है। अतः प्रेमी कवि उस सर्वव्यापक प्रियतम से मिलने के लिए उसकी कृपा के लिए उसकी एक झलक पाने के लिए अधीर हो जाता है। भक्तकवि का सर्वस्व कृष्ण है, घनश्याम है। उसकी हर 'तड़पन' हर आँसू, हर पीड़ा का प्रवाह, विरह की कातरता, प्रत्येक वेदना उस अनन्त प्रेमसागर रसो वै सः को समर्पित है :

अयि चित्त चञ्चलं मे किमु मुञ्चसे न चिन्ताम् ।
अपचीयसेऽनुचिन्तन्नवचञ्चलारुचिं ताम्
भवनेऽपि सा वने सा पुरतोऽथ पृष्ठतः सा

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अयि सर्वतोऽपि पश्यन्न वितृप्यसीह किं ताम् ?।।
तनुता मनोविकारो गहनाऽऽधिवेदनाऽपि।
इति यत्र मित्रसङ्घो न जहासि किं गतिं ताम्।।**25**

मानव की जीवन यात्रा में गीतिकाओं का महनीय स्थान है। संस्कृत भाषा में ग़ज़ल लेखन का प्रारम्भ भट्टमथुरानाथ शास्त्री से दृष्टिगोचर होता है, जिसका पल्लवित-पुष्पित स्वरूप डॉ.जगन्नाथ पाठक की 'पिपासा' नामक ग़ज़ल संकलन में प्राप्त होता है। मानव-जीवन की आदर्शोन्मुख विकासयात्रा में जितना बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक श्रम-संघर्ष होता है उसकी झलक भी भावात्मक सम्प्रेषणीयता के साथ 'पिपासा' में परिलक्षित होती है। डॉ.पाठक ने अपनी भावभूमि को अत्यन्त समृद्ध रीति से शब्दस्तबकों में गुम्फित किया है, जो इहलौक प्रेम को संस्पृष्ट करती हुई पारलौकिक परमानन्द स्वरूप 'परमप्रेम' (ईश्वर) को स्पर्श करती हैं :

सरांसि सन्तु सकुशलानि ते तथा नद्यः
मयोररीकृता जगति स्वयं पिपासेयम्।
लभे शमं कुत एव त्वमेव निर्दिश माम्
प्रवर्धते यदा मदन्तरं पिपासेयम्।
क्व भाग्यमेव हन्त भाग्यमेव कुतः
उदेति भाग्यवतः सततं पिपासेयम्।
क्व दूरदूरगतान् यामि पर्वतान् शरणम्
समीपमानयेत् सुनिर्झरं पिपासेयम्।(पिपासा)

प्रणय की अनन्त पिपासा को द्योतित व रेखांकित करती हुई ये पंक्तियाँ परमानन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने की उदात्त तथा ललित लालसा को प्रस्फुटित करती हैं। पाठक जी की एक और ग़ज़ल द्रष्टव्य है :

समुदेति सुप्रभाते किमु तस्य मन्दहासः,
स्फुरतीव चन्द्रहासः किमु तस्य मन्दहासः।
मृदुसौरमेण भरितः सुमनोविकासहेतुः,
स्वगुणेन कालिदासः किमु तस्य मन्दहासः।
परिमार्जितं नवीनं शरदिन्दुचन्द्रिकाभिः,
कमनीयशुक्लवासः किमु तस्य मन्दहासः।
किरणेन सम्पिनद्धो मृदुना हिरण्मयेन
प्रसृतोऽथवा विलासः किमुतस्य मन्दहासः।।**26**

पौ फटते ही मानो उस प्रियतम की मधुरिम मन्दहँसी सर्वत्र छिटक जाती है चन्द्रहास में भी उसी की मधुर मन्द हंसी छलकती है, स्फुरित होती है। सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति शकुन्तला की सुरभि तथा आत्मगुणों से कालिदास के समान मनोज्ञ क्या है उसी प्रियतम का मन्दमन्दहास।

विरह प्रेम की कसौटी है। वासनाजन्य प्रेम भी विरहाग्नि में तपकर अपने कालुष्य को मिटाकर शुद्ध उदात्त रूप धारण कर लेता है। विरह में संयोग सुख की सभी स्मृतियाँ विप्रलम्भ शृंगार को उदीप्त करने वाली होती है। डॉ.पाठक की ग़ज़लों में विरहजन्य अगणित मानसिक दशाओं की मार्मिक अभिव्यंजना दृष्टिगोचर होती है :

न क्षमश्चलितुं विचिन्वंस्त्वां मृगाक्षि! वने वने,
कण्टकैः क्षत विक्षतः सन् धावको जीवाम्यहम्
न त्वमेष्यसि शीघ्रमिह चेद् यामि रे प्रशमं क्षण
भस्मनाऽऽवृत एष कश्चित् पावको जीवाम्यहम्।**27**

अर्थात् हे मृगाक्षि इस जंगल दर जंगल खोजता खोजता, चलने की शक्ति नहीं, कष्टों के घाव युक्त दौड़ने वाला में जी रहा हूँ। यदि तुम जल्दी नहीं जल्दी नहीं आई तो मैं पलभर में जल जाऊँगा। मैं किसी राख के ढेर के नीचे जलने वाली अग्नि की तरह जीता हूँ ।

हमारे समाज में आज भी पुरुष के प्रति प्रेम प्रदर्शन नारी के अपयश का कारण बनता है परन्तु डॉ. पुष्पा दीक्षित ने स्त्री की इस चेतना को उजागर किया है कि उसे भी प्रेम प्रकट करने का अधिकार है, फिर चाहे सम्पूर्ण संसार उसके

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

विरुद्ध क्यों न हो। डॉ.पुष्पा दीक्षित की एक ग़ज़ल जिसमें कवयित्री अनन्त प्रेम का वर्णन करते हुए कहती है :

मनो मे नीयते रभसाऽन्तिकन्ते केन नो जाने।
क्षणं संप्रेक्ष्य ते रूपं धरा निखिलैवाविपरीता।।**28**

संस्कृत ग़ज़ल परम्परा में अग्नि के समान पवित्र एवं प्रज्ज्वलित शिखा के समान प्रकाशमान डॉ.पुष्पा दीक्षित के काव्यों में विरह की पीड़ा, प्रेम की अनन्यता, उपालम्भ, उत्कण्ठा एवं चेतना का रूप जिस तरह प्रतिबिम्बित हुआ है उसने उनके काव्य को जवात्य, भावगाम्भीर्य एवं नवीन ऊंचाई प्रदान की है। भावों का आवेग एवं पदावली की सटीकता इनकी काव्यसाधना एवं अनुभूति प्रणवता दोनों के परिचायक है। उनकी दृष्टि में प्रेम एक अनिर्वचनीय सर्वव्यापी अनुभव है :

प्रीतिरीतिरीदृशी न केनचिच्छूता,
च शालमेन यादृशा सम्प्रदर्शिता।
नावगम्यते प्रदीपकेन सा व्यथा,
एकपक्षतोऽसवो यदग्निसात्कृता।।**29**

अर्थात् जिस प्रकार पतंगा दीपक (लो) के प्रेम में अपने प्राण की आहुति दे देता है और दीपक अनभिज्ञ रहता है। उसी प्रकार यह नायिका भी अपने प्रेमी के प्यार में निश्चल भाव से अपने प्राण को न्यौछावर कर देती है।

अंत में हम कह सकते हैं कि मनुष्य की भाव संवेदनाओं में अगर प्रेम को मुख्य भाव माना जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रेम को ग़ज़ल का स्थायीभाव माना गया है। प्रो.मिश्र की ग़ज़लों में प्रेम-भावना बहुत दृष्टिगोचर होती है। वह प्रेम चाहे राष्ट्र प्रेम हो या वाणी पूर्वक हो माता के प्रति हो, पत्नी के प्रति या जन्म भूमि के प्रति। इनके प्रेम में न तो प्रेमिका के प्रति दीवानगी है और न ही प्रेम वासना की कालिमा। इनका प्रेम तो विशुद्ध सात्त्विक है, जो लाल सूर्य जैसी बिंदिया को देखकर काली घटा जैसे केशों में बंधे बेला के फूलों से सुसज्जित जूड़े को देखकर उत्पन्न होता है। यह हमारी भारतीय संस्कृति का ही भाव है कि जिसमें प्रेम गृहस्थ सुख की पवित्रता से जुड़ा हुआ है। प्रोमिश्र का अपनी अर्धांगिनी के प्रति अनन्य अनुराग आज भी मन में ही छुपा हुआ है :

नाऽद्यापि यां कथयितुं शक्तोऽभवं शुभेऽहम् ।
तिष्ठति सुरक्षिताऽसावार्तिः क्वचिन्निलीना।।**30**

अर्थात् हे शुभे आज तक जो कह पाने में मैं समर्थ नहीं हो सका आज भी वह मानसिक व्यथा (कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ कहीं (मन में) सुरक्षित (छिपी) है।

संदर्भ ग्रंथ

1 काक्षेण वीक्षितम् पृष्ठ 5
2 शिखरिणी, पृष्ठ 24
3 साहित्यवैभवम्, पृष्ठ 292
4 साहित्यवैभवम्, पृष्ठ 281
5 साहित्यवैभवम, पृष्ठ 295
6 शिखरिणी, पृष्ठ 2
7 हविर्धानी, पृष्ठ 118
8 प्रतानिनी, पृष्ठ 144
9 पिपासा, पृष्ठ 196
10 मृद्वीका, पृष्ठ 3
11 मृद्वीका, पृष्ठ 31
12 गलज्जलिकाशतकम्, पृष्ठ 64
13 गलज्जलिकाशतकम्, पृष्ठ 31
14 गलज्जलिकाशतकम्, पृष्ठ 52
15 द्राक्षावल्ली ग़ज़ल संकलना, पृष्ठ 117
16 द्राक्षावल्ली ग़ज़ल संकलना, पृष्ठ 118
17 द्राक्षावल्ली ग़ज़ल संकलना, पृष्ठ 127
18 काक्षेणवीक्षितम्, पृष्ठ 14
19 काक्षेण वीक्षितम्, पृष्ठ 16
20 काक्षेण वीक्षितम्, पृष्ठ 54
21 पिपासा पृष्ठ 96
22 हविर्धानी, पृष्ठ 42

23 पिपासा, पृष्ठ 196

24 साहित्यवैभवम्, पृष्ठ 284

25 साहित्यवैभवम्, मंजुनाथ ग्रन्थावलिः, पृष्ठ 293-294

26 पिपासा, पृष्ठ 79

27 पिपासा, पृष्ठ 15

28 अग्निशिखा, पृष्ठ 40

29, संस्कृत ग़ज़ल संग्रह, पृष्ठ 33

30 हविर्धानी, पृष्ठ 24